[2022] 9 एस.सी.आर. 766

जोगी राम

बनाम

सुरेश कुमार एवं अन्य

(सिविल अपील संख्या 1543–1544 वर्ष 2019)

दिनांक 01 फरवरी, 2022

[संजय किशन कौल और एम. एम. सुंदरेश, न्यायमूर्तिगण]

हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 – धारा 14(2) की तुलना में 14(1) – उद्देश्य और प्रयोज्यता– अभिनिर्णीत : उपधारा (2) का उद्देश्य यह है कि किसी संपत्ति के स्वामी पर सीमित संपत्ति देने के लिए कोई शर्त नहीं हो सकती है यदि वह अपनी पत्नी को शामिल करने का विकल्प चुनता है, लेकिन निश्चित रूप से यदि सीमित संपत्ति पत्नी को उसके भरण–पोषण के लिए है जो उक्त अधिनियम की धारा 14(1) के तहत पूर्ण संपत्ति में परिपक्व होगी – धारा 14 की उप–धारा (2) अन्य बातों के साथ–साथ एक वसीयत पर लागू होता है, जो प्रथम बार महिलाओं के पक्ष में स्वतंत्र और नया स्वत्व बना सकती है और यह पहले से मौजूद अधिकार की मान्यता नहीं है– ऐसे मामलों में किसी महिला के पक्ष में प्रतिबंधित संपत्ति कानूनी रूप से स्वीकार्य है और उक्त अधिनियम की धारा 14(1) उस क्षेत्र में लागू नहीं होगी – इसे अलावा धारा 14(1) का उद्देश्य पत्नी के सीमित हित के मामले में पूर्ण हित पैदा करना है, जहां ऐसी सीमित संपत्ति की उत्पत्ति उस समय के कानून से होती है – उद्देश्य यह नहीं हो सकता कि एक हिंदू पुरुष जिसके पास स्व–अर्जित संपत्ति है, वह पत्नी को सीमित संपत्ति देने वाली वसीयत निष्पादित करने में असमर्थ है यदि भरण पोषण सहित अन्य सभी पहलुओं का ध्यान रखा जाए– वर्तमान मामले में वसीयतकर्ता, ने अपनी पत्नी (आरडी) के भरण पोषण की आवश्यकताओं का पूरा ध्यान रखा था और यह सुनिश्चित किया था कि संपत्ति से उत्पन्न राजस्व केवल उसे ही मिलेगा – हालाँकि, वह दूसरी पत्नी के रूप में उसे केवल एक सीमित हित देना चाहता था और उसके जीवनकाल के बाद पूरी संपत्ति उसके पुत्र(अपीलकर्ता) को विरासत में देना चाहता था – इस प्रकार, यह उक्त अधिनियम की धारा 14(2) के प्रावधान ऐसे परिदृश्य में लागू होंगे और 'आरडी' के पक्ष में केवल जीवन हित था – इस तरह उत्तरदाताओं–तृतीय पक्ष (सद्भाविक क्रेता होने का दावा करने वाले) जिन्होनें 'आरडी' से अपने अधिकार प्राप्त किए, उन्हें उससे बेहतर स्वत्व नहीं मिल सकता, जो उनके पास था – इसके अलावा, मुकदमों के क्रम को उत्तरदाताओं को सद्भाविक क्रेता के रूप में वर्गीकृत करने के लिए शायद ही कहा जा सकता है – पहला प्रयास 'आरडी' की पुत्री द्वारा किया गया था, जो निस्संदेह एक मिलीभगत डिक्री है, जबकि उसे संपत्ति में कोई हित नहीं था – फिर उसने संपत्ति में पट्टा के आधार पर हित बनाने की मांग की – इन दोनों पहलुओं को 'आरडी' और उनकी पुत्री के खिलाफ माना गया, मुकदमे के पहले दौर में उच्चतम न्यायालय तक ने स्पष्ट रूप से कहा कि 'आरडी' के पास संपत्ति में केवल सीमित संपत्ति थी – उच्चतम न्यायालय तक अधिकार खो देने के बावजूद, विक्रेता 'आरडी' के खिलाफ मुकदमे के लंबित रहने के दौरान भी बिक्री कार्य हस्तक्षेप कारक थे – साथ ही उच्च न्यायालय ने इस आधार पर गलत आधार पर कार्यवाही की कि मुकदमेबाजी के पहले दौर में कोई बाध्यकारी मिसाल कायम नहीं होगी क्योंकि मुकदमेबाजी के पहले दौर के बाद कानून में बदलाव हुआ था – वास्तव में, कानून में कोई बदलाव नहीं हुआ है क्योंकि सभी निर्णय समय से काफी पहले के थे – उत्तरवादीगण के अधिकार केवल 'आरडी' से प्राप्त होते हैं और एक बार जब निर्णय उस पर बाध्यकारी हो जाता है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि वह तीसरे पक्ष के पक्ष में निर्णय के विपरीत अधिकार सृजित कर सकती हैं और वह भी मुकदमे के लंबित रहने के दौरान किया गया था – विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण सही दृष्टिकोण है – उत्तरदाताओं के पक्ष में विक्रय विलेखों को बनाए नहीं रखा जा सकता है – विचारण न्यायालय की डिक्री (अपीलकर्ता के पक्ष में 'आरडी' द्वारा निष्पादित विक्रय विलेखों को चुनौती देने वाली घोषणा और

निषेधाज्ञा की डिक्री) की अपीलीय अदालत द्वारा पुष्टि की पुनः पुष्टि की गई – संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882– धारा 41 – पूर्व न्याय ।

न्यायालय द्वारा अपीलों को अनुज्ञात करते हुए,

अभिनिर्णीत – 1.1 उक्त अधिनियम की धारा 14 की उपधारा (2) परंतुक की प्रकृति में है। इसकी शुरुआत 'गैर बाध्यकारी खण्ड' से होती है। इस प्रकार, यह कहता है कि "उप–धारा (1) में अन्तर्विष्ट कोई बात ऐसी किसी संम्पत्ति को लागू न होगी जो दान अथवा वसीयत या अन्य किसी लिखत के अधीन अथवा सिविल न्यायालय की डिक्री या आदेश के अधीन ..." आदि। जहां ऐसी संपत्ति में एक प्रतिबंधित संपत्ति निर्धारित की गई है। उप धारा (2) का उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट है जैसा कि इस न्यायालय द्वारा विभिन्न न्यायिक निर्णयों में बार–बार प्रतिपादित किया गया है, अर्थात, किसी संपत्ति के स्वामी पर सीमित संपत्ति देने के लिए कोई शर्त नहीं हो सकती है यदि वह अपनी पत्नी को शामिल करने का विकल्प चुनता है, लेकिन निश्चित रूप से यदि सीमित संपत्ति पत्नी को उसके भरण–पोषण के लिए है जो उक्त अधिनियम की धारा 14(1) के तहत पूर्ण संपत्ति में परिपक्व होगी। वसीयत में तुलसी राम ने राम देवी को सीमित संपत्ति प्रदान करते हुए स्पष्ट रूप से कहा था कि वह अपनी आजीविका के लिए 12 संपत्ति से आय अर्जित करेंगी। इस प्रकार, संपत्ति से उत्पन्न आय वह है जो भरण पोषण के लिए दी गई है, न कि संपत्ति के रूप में। अगला स्पष्टीकरण यह है कि राम देवी के जीवनकाल के बाद अपीलकर्ता को शेष आधे हिस्से का स्वामित्व भी मिल जाएगा। यह निर्दिष्ट किया गया है कि यदि राम देवी की मृत्यु तुलसी राम से पहले हो जाती है, तो सभी संपत्तियां पूरी तरह से अपीलकर्ता के पास चली जाएंगी और अन्य संतानों को संपत्ति में कोई हित प्राप्त नहीं होगा। (पैरा 18, 19)

1.2 वर्तमान मामले में केवल दो वास्तविक पहलुओं की जांच की जानी है (i) दिए गए तथ्यात्मक परिदृश्य में क्या राम देवी उक्त अधिनियम की धारा 14(1) के मद्देनजर संपत्ति की पूर्ण मालिक बन गई या वसीयत के मद्देनजर धारा 14 (2) के तहत स्पष्टीकरण लागू होगा। (ii) अपीलकर्ता और राम देवी, वसीयत के दो लाभार्थियों के बीच इस न्यायालय में आए मुकदमे के पहले दौर का क्या प्रभाव है ? इन दोनों प्रश्नों का उत्तर अपीलकर्ता के पक्ष में दिया जाना चाहिए और इस कारण से दिया गया निर्णय अस्थिर है। (पैरा 26, 27)

1.3 वी. तुलसम्मा और अन्य के मौलिक निर्णय में निष्कर्ष का प्रासंगिक पहलू पैरा4 है जो बताता है कि उक्त अधिनियम की धारा 14 की उप धारा (2) कहां लागू होगी और यह अन्य बातों के साथ–साथ वसीयत पर भी लागू होती है जो प्रथम बार महिलाओं के पक्ष में स्वतंत्र और नया स्वत्व बना सकती है और यह पहले से मौजूद अधिकार की मान्यता नहीं है। ऐसे मामलों में किसी महिला के पक्ष में प्रतिबंधित संपत्ति कानूनी रूप से स्वीकार्य है और उक्त अधिनियम की धारा 14(1) उस क्षेत्र में लागू नहीं होगी। धारा 14(1) का उद्देश्य पत्नी के सीमित हित के मामले में पूर्ण हित पैदा करना है, जहां ऐसी सीमित संपत्ति की उत्पत्ति उस समय के कानून से होती है। उद्देश्य यह नहीं हो सकता कि एक हिंदू पुरुष जिसके पास स्व–अर्जित संपत्ति है, वह पत्नी को सीमित संपत्ति देने वाली वसीयत निष्पादित करने में असमर्थ है यदि भरण पोषण सहित अन्य सभी पहलुओं का ध्यान रखा जाता है। यदि हम ऐसा मानते हैं तो इसका तात्पर्य यह होगा कि यदि पत्नी को वसीयत के तहत विरासत से वंचित किया जाता है तो यह टिकाऊ होगा, लेकिन यदि सीमित संपत्ति दी जाती है तो यह वसीयतकर्ता के आशय के बावजूद पूर्ण हित में परिपक्व हो जाएगी। हमारे विचार से यह उद्देश्य नहीं हो सकता। (पैरा 30, 31)

वी. तुलसम्मा और अन्य बनाम वी. शेषा रेड्डी (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि

(1977) 3 एससीसी 99 : (1977) 3 एससीआर 261 – संदर्भित

1.4 वर्तमान मामले में वसीयतकर्ता, तुलसी राम ने अपनी पत्नी के भरण पोषण की आवश्यकताओं का पूरा ध्यान रखा था और यह सुनिश्चित किया था कि संपत्ति से उत्पन्न राजस्व केवल उसे ही मिलेगा। हालाँकि, वह दूसरी पत्नी के रूप में उसे केवल एक सीमित हित देना चाहता था और उसके जीवनकाल के बाद पूरी संपत्ति उसके पुत्र को विरासत में मिलेगी।इस प्रकार, यह उक्त अधिनियम की धारा 14(2) के

प्रावधान ऐसे परिदृश्य में लागू होंगे और राम देवी के पक्ष में केवल जीवन हित था। स्वाभाविक अनुक्रम यह है कि उत्तरदाताओं को विक्रेता के पास जो स्वामित्व है, उससे बेहतर स्वत्व नहीं मिल सकता है और इस प्रकार, विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण सही दृष्टिकोण है और उत्तरदाताओं के पक्ष में विक्रय विलेखों को बनाए नहीं रखा जा सकता है। (पैरा 32)

1.5 दूसरे पहलू पर विचार करने पर, मुकदमों के क्रम को उत्तरदाताओं को सद्भाविक क्रेता के रूप में वर्गीकृत करने के लिए शायद ही कहा जा सकता है। पहला प्रयास राम देवी की पुत्री द्वारा किया गया था, जो निस्संदेह एक मिलीभगत डिक्री है, जबकि उसे संपत्ति में कोई हित नहीं था। फिर उसने संपत्ति में पट्टा के आधार पर हित बनाने की मांग की। इन दोनों पहलुओं को राम देवी और उनकी पुत्री के खिलाफ माना गया, मुकदमे के पहले दौर में उच्चतम न्यायालय तक ने स्पष्ट रूप से कहा कि राम देवी के पास संपत्ति में केवल सीमित संपत्ति थी। उच्चतम न्यायालय तक अधिकार खो देने के बावजूद, विक्रेता राम देवी के खिलाफ मुकदमे के लंबित रहने के दौरान भी बिक्री कार्य हस्तक्षेप कारक थे। उच्च न्यायालय ने इस आधार पर गलत आधार पर कार्यवाही की कि मुकदमेबाजी के पहले दौर में कोई बाध्यकारी मिसाल कायम नहीं होगी क्योंकि मुकदमेबाजी के पहले दौर के बाद कानून में बदलाव हुआ था। वास्तव में, कानून में कोई बदलाव नहीं हुआ है क्योंकि सभी निर्णय समय से काफी पहले के थे। उत्तरवादीगण के अधिकार केवल राम देवी से प्राप्त होते हैं और एक बार जब निर्णय राम देवी पर बाध्यकारी हो जाता है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि वह तीसरे पक्ष के पक्ष में निर्णय के विपरीत अधिकार सृजित कर सकती हैं और वह भी मुकदमे के लंबित रहने के दौरान किया गया था। विचाराधीन संव्यवहार न केवल सद्भाविक नहीं हैं, बल्कि चरित्र में संदिग्ध भी हैं, जो तीसरे पक्ष के रूप में वसीयत के तहत प्रदत्त अपीलकर्ता के अधिकारों से किसी तरह इनकार करते हैं। राम देवी और उनकी पुत्री का बार–बार किया गया प्रयास पहले सफल नहीं हुआ और राम देवी के खरीदारों के लिए इसे सफल होने की अनुमति नहीं दी जा सकती। उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश के आक्षेपित निर्णय को रद्द कर दिया जाता है और विचारण न्यायालय के दिनांक 13.8.2009 के निर्णय की अपीलीय न्यायालय द्वारा दिनांक 7.10.2010 को की गई पुष्टि की पुनः पुष्टि की जाती है। (पैरा 33–35)

जुपुडी पारधा सारथी बनाम पेंटापति राम कृष्ण और अन्य(2016) 2 एससीसी 56 : [2015] 14 एससीआर 374 ; शकुन्तला देवी बनाम कमला एवं अन्य (2005) 5 एससीसी 390 – विभेदित।

मथुरा प्रसाद बाजू एवं अन्य बनाम डोसीबाई एन.बी. जीजेभोय (1970) 1 एससीसी 613 : [1970] 3 एससीआर 830 ; पंकजाक्षी (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि बनाम चंद्रिका एवं अन्य एआईआर 2016 एससी 1213 : [2016] 3 एससीआर 1018 ; साधु सिंह बनाम गुरुद्वारा साहिब नारिके और अन्य (2006) 8 एससीसी 75 : [2006] 5 सप्ली एससीआर 799 ; गद्दाम रामकृष्ण रेड्डी एवं अन्य बनाम गद्दाम रामिरेड्डी और अन्य (2010) 9 एससीसी 602 : [2010] 11 एससीआर 656 – संदर्भित।

निर्णय विधि संदर्भ

[1977] 3 एससीआर 261	संदर्भित	पैरा–7
[2015] 14 एससीआर 374	विभेदित	पैरा–7
(2005) 5 एससीसी 390	विभेदित	पैरा–7
[1970] 3 एससीआर 830	संदर्भित	पैरा–7
[2016] 3 एससीआर 1018	संदर्भित	पैरा–13
[2006] 5 सप्ली. एससीआर 799	संदर्भित	पैरा–23
[2010] 11 एससीआर 656	संदर्भित	पैरा–23

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार : सिविल अपील संख्याएं 1543 – 1544 वर्ष 2019 .

पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ द्वारा आरएसए नंबर 210 और 209 वर्ष 2011 में

पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 22.02.2018 से उद्भूत ।

अपीलार्थीगण की ओर से गगन गुप्ता अधिवक्ता।

उत्तरदाताओं की ओर से विश्वजीत सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता, मनीष कुमार चौधरी, भास्कर मिश्रा, सुश्री सृष्टि खुराना, सुश्री सृष्टि चौधरी, सुश्री नमिता चौधरी, अधिवक्ता ।

न्यायालय का निर्णय सुनाया गया –

संजय किशन कौल, न्यायमूर्ति

<u>पृष्ठभूमि</u> :

1. तुलसी राम, जिनकी मृत्यु दिनांक 17.11.1969 को हो गई, की वसीयत दिनांक 15.4.1968 के परिणाम आधी सदी के बाद भी हमारे समक्ष लंबित हैं।

2. पूर्वोक्त वसीयत में वसीयतकर्ता की संपत्ति उसके पुत्र अपीलकर्ता और उसकी दूसरी पत्नी राम देवी (पहली पत्नी मृत है, जिसकी संतान अपीलकर्ता है) को दे दी गई है। 175 कनाल और 9 मरला भूमि, एक आवासीय मकान और एक बाड़ा ग्राम जुंडला हरियाणा को अपीलकर्ता और रामदेवी को आधा–आधा वसीयत किया गया था। हालाँकि, वसीयत की प्रकृति दोनों के लिए अलग थी। अपीलकर्ता को भूमि और संपत्ति के अपने हिस्से की सीमा तक पूर्ण स्वामित्व अधिकार दिया गया, जबकि राम देवी को उनके जीवनकाल के दौरान उनके उपभोग के लिए भूमि के हिस्से के संबंध में एक सीमित स्वामित्व दिया गया था, जिसमें एक विशिष्ट प्रावधान था कि वह किसी अन्य को हस्तांतरित, स्थानांतरित या तृतीय पक्ष का अधिकार सृजित नहीं कर सकती थी। इसके बाद यह संपत्ति उसके जीवनकाल के बाद पूरी तरह से अपीलकर्ता में निहित हो जाएगी।

3. ऐसा प्रतीत होता है कि 1969 में तुलसी राम की मृत्यु के बाद मुकदमे का पहला दौर शुरू होने तक कई वर्षों तक संपत्तियों का उपयोग वसीयत के अनुसार किया गया था। राम देवी की पुत्री बिमला देवी ने करनाल के उप न्यायाधीश प्रथम श्रेणी न्यायालय में मुकदमा दायर कर अपनी माता राम देवी के विरूद्ध घोषणा के लिए दावा किया कि वह तुलसी राम द्वारा राम देवी को वसीयत की गई भूमि के आधे हिस्से की मालिक बन गई थी, जिसके परिणामस्वरूप दिनांक 15.1.1986 को एक डिक्री पारित की गई थी। इस स्तर पर ही यह कहा जा सकता है कि यह मुकदमा मूलतः मिलीभगत वाला था। डिक्री पारित होने पर बिमला देवी ने राम देवी के सीमित हिस्से में आने वाली भूमि के संबंध में दिनांक 17.6.1986 को अमर सिंह के पक्ष में एक पट्टा विलेख निष्पादित किया। इसके बाद अपीलकर्ता ने राम देवी, बिमला देवी और अमर सिंह को पक्षकार बनाते हुए करनाल के वरिष्ठ उप न्यायाधीश के समक्ष घोषणा और स्थायी निषेधाज्ञा के लिए सिविल मुकदमा संख्या 94/1993 दायर किया । मुकदमे का आधार यह था कि राम देवी का केवल सीमित जीवन हित था, बिमला देवी द्वारा घोषणा की डिक्री मिलीभगत के माध्यम से प्राप्त की गई थी और पट्टा विलेख एक फर्जी दस्तावेज था जिसका राम देवी के मृत्यु के बाद संपत्ति का उत्तराधिकारी होने के अपीलकर्ता के अधिकारों पर कोई विपरित प्रभाव नहीं पड़ेगा। हालाँकि, मुकदमा केवल राम देवी द्वारा लड़ा गया था और अन्य दो प्रतिवादियों पर एकपक्षीय कार्यवाही की गई थी । मुकदमे के परिणामस्वरूप दिनांक 27.9.1995 को इस आशय की निर्णय एवं डिक्री पारित की गयी कि अपीलकर्ता ने तुलसी राम द्वारा निष्पादित वसीयत को साबित कर दिया है, यह मामला स्पष्ट रूप से हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 14(2) (इसके बाद 'उक्त अधिनियम' के रूप में संदर्भित) के तहत आता है, जो एक अपवाद की प्रकृति में था, क्योंकि इसने ऐसी संपत्ति में प्रतिबंधित अधिकार के साथ वसीयत के तहत विरासत में मिली संपत्ति के संबंध में उक्त अधिनियम की धारा 14(1) के लाभों को प्राप्त करने से रोक दिया था। इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकाला गया कि राम देवी की सीमित संपत्ति को पूर्ण संपत्ति तक विस्तारित नहीं किया जा सकता है और सिविल न्यायालय की दिनांक 15.1.1986 की डिक्री और दिनांक 17.6.1986 की लीज डीड को रद्द कर दिया गया।

4. यह ध्यान दिया जा सकता है कि भले ही मुकदमा अंतराल अवधि में लंबित था, राम देवी ने दिनांक 29.4.1993 को धरम सिंह के पक्ष में 38 कनाल 14 मरला भूमि और कांता देवी के पक्ष में 11 कनाल 3 मरला भूमि के संबंध में दो विक्रय पत्र निष्पादित किए, बाद में बलदेव के पक्ष में 8/9.6.1998 को 40 कनाल 8 मरला भूमि के संबंध में एक और विक्रय पत्र निष्पादित किया गया। ये सभी वाद भूमि के भाग थे। बाद में करनाल के अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के समक्ष राम देवी की अपील के लंबित होने के दौरान अपील को दिनांक 15.4.1999 के निर्णय के तहत खारिज कर दिया गया था। जहां तक बलदेव की अपील का संबंध है, पर्याप्त अवसर के बावजूद राम देवी द्वारा बलदेव को नोटिस देने में असमर्थता के कारण उसे भी खारिज कर दिया गया था। उसी मुकदमे के तीसरे दौर में पंजाब न्यायालय अधिनियम, 1918 की धारा 41 (इसके बाद 'पीसी अधिनियम' के रूप में संदर्भित) के तहत राम देवी की दूसरी अपील आरएसए नंबर 1700/1999 में दिनांक 23.10.2001 के निर्णय के तहत वही परिणाम हुआ। उसके बाद पूरे मामले को शांत हो जाना चाहिए था क्योंकि विशेष अनुमति याचिका भी दिनांक 29.4.2002 के आदेश द्वारा खारिज कर दी गई थी। गौरतलब है कि इसी अंतराल में दिनांक 26.8.1999 को राम देवी का भी निधन हो गया। यह मुकदमेबाजी के पहले दौर की कहानी तक है।

5. मुकदमे का दूसरा दौर तब शुरू हुआ जब अपीलकर्ता ने राम देवी द्वारा निष्पादित विक्रय पत्र को चुनौती देने की घोषणा और निषेधाज्ञा के लिए सिविल जज, एसडी, करनाल के समक्ष सिविल सूट नंबर 256/157 वर्ष् 2008 का दायर किया। अपीलकर्ता के पक्ष में दिनांक 13.8.2009 के निर्णय और डिक्री के माध्यम से यह मुकदमा भी डिक्री किया गया था ।

6. एक बार फिर से विद्वान व्यवहार न्यायाधीश के फैसले का आधार दिनांक 27.9.1995 के पहले के निर्णय और डिक्री पर आधारित थी, जिसमें कहा गया था कि राम देवी के पास केवल सीमित स्वामित्व अधिकार था और वह वाद की संपत्ति को अंतरित नहीं कर सकती थी। कानून में कोई बदलाव नहीं होने के कारण, अपीलकर्ता के पक्ष में पिछली डिक्री को पक्षकारों और उनके हित उत्तराधिकारियों के बीच बाध्यकारी माना गया था। इस प्रकार, निष्पादित विक्रय पत्र अवर न्यायालय के निर्णय के विपरीत होने के कारण अस्थिर पाए गए। एक बार फिर, उक्त अधिनियम की धारा 14(1) और 14(2) के निर्माण के बारे में समान राय थी, क्योंकि कोई भी विपरीत व्याख्या एक हिंदू के वसीयत को निष्पादित करने के अधिकार को प्रतिबंधित करने के समान होगी जैसा कि उक्त अधिनियम की धारा 30 के तहत परिकल्पित है। न्यायालय ने अपीलकर्ता को उसका वास्तविक स्वामी होने के नाते कब्जे की डिक्री दे दी। न्यायालय ने यह भी कहा कि क्रेता का स्वामित्व राम देवी से बेहतर नहीं हो सकता क्योंकि उन्होंने अपने अधिकार उनसे प्राप्त किए थे और मुकदमेबाजी के इतिहास को देखते हुए उन्हें सदभाविक क्रेता भी नहीं माना जा सकता।

7. बलदेव और धरम सिंह की विधिक उत्तराधिकारी कांता देवी ने दिनांक 13.8.2009 के उक्त निर्णय के खिलाफ अपील दायर की, जिसे सिविल अपील संख्या 56/2009 में दिनांक 7.10.2010 के निर्णय द्वारा खारिज कर दिया गया। इसने उच्च न्यायालय के समक्ष आरएसए संख्या 210/2011 के रूप में दूसरी अपील को जन्म दिया।

8. उत्तरदाताओं ने **वी. तुलसम्मा और अन्य बनाम वी. शेषा रेड्डी (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि (1977) 3 एससीसी 99** मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष गुहार लगाई और उनके द्वारा तर्क दिया कि वसीयत के तहत दी गई संपत्ति पर राम देवी का अधिकार एक पूर्ण स्वामित्व अधिकार में बदल गया था, जिससे वह इसे अंतरित करने में सक्षम हो गईं। इस न्यायालय के बाद के निर्णय **जुपुडी पारधा सारथी बनाम पेंटापति राम कृष्णा और अन्य (2016) 2 एससीसी 56** को भी उक्त तर्कों के समर्थन में संदर्भित किया गया था। मुकदमे के पहले दौर की डिक्री को दूसरे मुकदमे में पूर्व न्याय के रूप में लागू नहीं करने का तर्क दिया गया था क्योंकि पहले के मुकदमे में निर्णय उनके विचार के समय प्रचलित कानून के विपरीत था (**शकुंतला देवी बनाम कमला और अन्य (2005) 5 एससीसी 390**), जो **मथुरा प्रसाद बाजू और अन्य बनाम डोसीबाई एनबी जीजेभोय (1970) 1 एससीसी 613**) को संदर्भित करता है । बिना किसी पूर्वाग्रह के उत्तरदाताओं ने सद्भाविक क्रेता होने का भी दावा किया कि, संपत्ति अंतरण अधिनियम,

1882 की धारा 41 (इसके बाद 'टीपी अधिनियम' के रूप में संदर्भित) के तहत संरक्षित किया गया था।

9. दूसरी ओर अपीलकर्ता ने तर्क दिया कि पूर्व न्याय का सिद्धांत पूर्व के निर्णय को ध्यान में रखते हुए लागू होगा क्योंकि राम देवी के पास सीमित संपत्ति होने का मामला उच्चतम न्यायालय तक बरकरार रखा गया है। अपीलकर्ता ने वाद संपत्ति का कब्ज़ा भी ले लिया था और निर्णयों के निष्पादन को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी।

10. संशोधन के बाद उत्तरदाताओं का भाग्य अनुकूल हो गया क्योंकि वे दिनांक 22.2.2018 के आक्षेपित निर्णय के संदर्भ में उच्च न्यायालय के समक्ष सफल हुए। आक्षेपित निर्णय में चर्चा तीन पहलुओं के आसपास घूमती है :

(ए) क्या मुकदमेबाजी का पहला दौर अपील के लिए पूर्व न्याय के रूप में कार्य करता है।

(बी) क्या वसीयत के माध्यम से प्रदत्त वाद संपत्ति पर राम देवी का सीमित अधिकार उक्त अधिनियम की धारा 14(1) के तहत पूर्ण अधिकार में बदल गया है।

(सी) क्या उच्च न्यायालय को दूसरी अपील पर निर्णय लेने में कानून का एक महत्वपूर्ण प्रश्न तैयार करने का आदेश दिया गया था।

11. पहले पहलू पर उच्च न्यायालय ने पाया कि **शकुंतला देवी** मामले (उक्त) में प्रतिपादित तथ्यात्मक परिदृश्य और विधि सिद्धांत वर्तमान मामले के तथ्यों पर पूरी तरह से लागू होंगे। उस मामले के तथ्यात्मक परिदृश्य में, एक उत्तमदासी वाद संपत्ति का उत्तराधिकारी था और उसने विक्रय विलेख और दान विलेख के माध्यम से इसे अंतरित कर दिया था। उत्तमदासी की पुत्री, ताकामी ने अंतरण को सफलतापूर्वक चुनौती दी और डिक्री अंतिम हो गई। इसके बाद उत्तमदासी ने उसी वाद संपत्ति के संबंध में एक वसीयत निष्पादित की। टिकामी ने पिछले घोषणात्मक डिक्री के आधार पर कब्जे के लिए एक वाद दायर किया, जिसमें उसे संपत्ति का स्वामित्व अधिकार माना गया था। इस न्यायालय ने राय दी कि मामला पूर्व न्याय सिद्धांत के रूप में गठित होगा। तिकामी के पक्ष में पहली घोषणात्मक डिक्री वाद संपत्ति में उत्तमदासी के सीमित अधिकार के आधार पर दी गई थी। जब तक दूसरी डिक्री की कोशिश की गई, तब तक **वी. तुलसम्मा और अन्य** मामले (उक्त) में उच्चतम न्यायालय ने उक्त अधिनियम की धारा 14 के तहत कानून को इस हद तक घोषित कर दिया था कि सीमित अधिकारों के साथ उत्तमदासी जैसी वसीयत के तहत लाभार्थी उसी का पूर्ण स्वामी बन जाएगा। चूंकि पहली घोषणात्मक डिक्री के बाद से कानून बदल दिया गया था, इसलिए यह कब्जे के डिक्री में पूर्व न्याय के रूप में काम नहीं करेगा। **वी. तुलसम्मा और अन्य** मामले (उक्त) में निर्णय भूतलक्षी नहीं था, लेकिन एक सामान्य घोषणात्मक डिक्री को अंतिम रूप नहीं मिलेगा यदि इसका उपयोग भविष्य में कब्जे की डिक्री में किया जाता है और भविष्य में कब्जे के मुकदमें में प्रतिवादी के लिए यह स्थापित करने के लिए खुला रहेगा कि पहले की घोषणात्मक डिक्री वैध नहीं थी । इस प्रकार उत्तरदाताओं को वाद संपत्ति पर अपीलकर्ता के कब्जे को चुनौती देने का हकदार माना गया।

12. दूसरे पहलू पर उच्च न्यायालय ने यह विचार किया है कि **वी. तुलसम्मा और अन्य** मामले (उक्त) ने उक्त अधिनियम की धारा 14(1) और 14(2) के तहत किसी भी अनिश्चितता को पर्याप्त रूप से हल कर दिया है। एक हिंदू महिला को किसी संपत्ति पर भरण–पोषण का अधिकार है यदि उसके भरण–पोषण के लिए कोई प्रभार लगाया जाता है, तो यह अधिकार कानूनी रूप से लागू करने योग्य हो जाएगा, बिना किसी प्रभार के भी, भरण–पोषण का दावा पहले से मौजूद अधिकार था, इसलिए इस तरह के अधिकार की घोषणा करने वाला कोई भी अंतरण कोई नया हित प्रदान नहीं करेगा बल्कि केवल पहले से मौजूद अधिकारों की पुष्टि करेगा और उक्त अधिनियम की धारा 14(2) की व्याख्या इस तरीके से नहीं की जा सकती है जो उक्त अधिनियम की धारा 14(1) और 14(2) को कमजोर कर देगी। केवल ऐसे परिदृश्य में जहां लिखत ने प्रथम बार पत्नी के पक्ष में एक नया हित सृजित किया, धारा 14(2) लागू होगी, न कि जहां पहले से मौजूद अधिकार था। यह माना गया कि राम देवी को एक सीमित अधिकार प्रदान किया गया था, जो मुकदमे की संपत्ति पर पूर्ण अधिकार में बदल जाएगा क्योंकि यह संपत्ति पर पहले से मौजूद अधिकार की पुष्टि मात्र था।

13. अंतिम पहलू पर यह माना गया कि **पंकजाक्षी (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधिगण और अन्य बनाम चंद्रिका और अन्य ए आई आर 2016 एस सी 1213** के इस न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय को याचिका पर निर्णय लेते समय विधि का एक महत्वपूर्ण प्रश्न तैयार करने की आवश्यकता नहीं थी कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (इसके बाद 'उक्त संहिता' के रूप में संदर्भित) की धारा 97(1) का पीसी अधिनियम पर कोई प्रयोज्यता नहीं होगी ।

14. अपीलकर्ता द्वारा इस न्यायालय के पास आने पर दिनांक 4.7.2018 को एसएलपी में नोटिस जारी किया गया था, जिसमें उस तारीख को यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया गया था क्योंकि अपीलकर्ता ने डिक्री के निष्पादन में पहले ही कब्जा ले लिया था। दिनांक 4.2.2019 को अनुमति प्रदान की गई और अंतरिम आदेश को पूर्ण बना दिया गया।

15. उपर्युक्त के संदर्भ में इस मामले की सुनवाई हमारे द्वारा की गई।

<u>तर्क</u> :

16. उक्त अधिनियम के प्रावधानों की सराहना करने के लिए उक्त अधिनियम की धारा 14 को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत करना उचित होगा :

> **"14. हिंदू महिला की संपत्ति उसकी पूर्ण संपत्ति होगी।–** (1) हिंदू महिला के कब्जें में की कोई भी संपत्ति, चाहे इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व या पश्चात अर्जित की गई हो, उसके द्वारा पूर्ण स्वामी के तौर पर न कि परिसीमित स्वामी के तौर पर धारित की जाएगी ।
>
> **स्पष्टीकरण** – इस उपधारा में, "संपत्ति" के अंतर्गत वह चल और अचल संपत्ति आती है, जो हिंदू महिला ने विरासत द्वारा या वसीयत द्वारा, या विभाजन में, या भरण–पोषण के या भरण–पोषण की बकाया के बदले में, अथवा अपने विवाह के पूर्व या विवाह के समय या पश्चात दान द्वारा किसी व्यक्ति से, चाहे वह सम्बन्धी हो या न हो, अथवा अपने कौशल या परिश्रम द्वारा अथवा क्रय द्वारा अथवा चिरभोग द्वारा अथवा अन्य रीति से, चाहे वह कैसी क्यों न हो, अर्जित की हो, और ऐसी कोई संपत्ति भी जो इस अधिनियम के प्रारंभ से अव्यवहित पूर्ण स्त्रीधन के रूप में उसके द्वारा धारित थी ।
>
> (2) उप–धारा (1) में अन्तर्विष्ट कोई बात ऐसी किसी संम्पत्ति को लागू न होगी जो दान अथवा वसीयत या अन्य किसी लिखत के अधीन अथवा सिविल न्यायालय की डिक्री या आदेश के अधीन या पंचाट के अधीन अर्जित की हो, यदि दान, वसीयत अथवा अन्य लिखत या डिक्री, आदेश या पंचाट के निर्बन्धन ऐसी संपत्ति से निर्बन्धित सम्पदा विहित करते हो ।

17. इसमें कोई संदेह नहीं है कि उक्त अधिनियम की धारा 14 एक हिंदू महिला को संपत्ति का अधिकार देने के लिए उक्त अधिनियम का हिस्सा है और एक प्रगतिशील कदम था। उक्त अधिनियम की धारा 14 की उप–धारा (1) यह स्पष्ट करती है कि यह उक्त अधिनियम के प्रारंभ होने से पहले या बाद में अर्जित संपत्तियों पर लागू होता है। इस प्रकार की किसी भी संपत्ति को उसके पूर्ण स्वामी के रूप में रखा जाना था, न कि सीमित स्वामी के रूप में। उक्त अधिनियम की धारा 14 की उप–धारा (1) का स्पष्टीकरण इस उप–धारा में "संपत्ति" के अर्थ को परिभाषित करता है, जिसमें "संपत्ति" के अंतर्गत वह चल और अचल संपत्ति आती है, जो हिंदू महिला ने विरासत द्वारा या वसीयत द्वारा, या विभाजन में, या भरण–पोषण के या भरण–पोषण की बकाया के बदले में, किसी व्यक्ति से दान द्वारा, अथवा अपने कौशल या परिश्रम द्वारा अथवा क्रय द्वारा अथवा चिरभोग द्वारा अथवा अन्य रीति से, चाहे वह कैसी क्यों न हो, अर्जित की हो, और इसमें स्त्रीधन भी शामिल हैं। स्पष्टीकरण अत्यधिक विस्तृत है ।

18. उक्त अधिनियम की धारा 14 की उपधारा (2) परंतुक की प्रकृति में है। इसकी शुरुआत 'गैर बाध्यकारी खण्ड' से होती है। इस प्रकार, यह कहता है कि "उप–धारा (1) में अन्तर्विष्ट कोई बात ऐसी किसी संम्पत्ति को लागू न होगी जो दान अथवा वसीयत या अन्य किसी लिखत के अधीन अथवा सिविल न्यायालय की डिक्री या आदेश के अधीन ..." आदि। जहां ऐसी संपत्ति में एक प्रतिबंधित संपत्ति निर्धारित की गई है।

हमारे विचार में उपरोक्त उप धारा (2) का उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट है जैसा कि इस न्यायालय द्वारा विभिन्न न्यायिक निर्णयों में बार–बार प्रतिपादित किया गया है, अर्थात, किसी संपत्ति के स्वामी पर सीमित संपत्ति देने के लिए कोई शर्त नहीं हो सकती है यदि वह अपनी पत्नी को शामिल करने का विकल्पचुनता है, लेकिन निश्चित रूप से यदि सीमित संपत्ति पत्नी को उसके भरण–पोषण के लिए है जो उक्त अधिनियम की धारा 14(1) के तहत पूर्ण संपत्ति में परिपक्व होगी।

19. प्रस्तुतियों पर विचार करने से पहले वसीयत की ओर रुख करना उचित होगा। वसीयत में तुलसी राम ने राम देवी को सीमित संपत्ति प्रदान करते हुए स्पष्ट रूप से कहा था कि वह अपनी आजीविका के लिए संपत्ति से आय अर्जित करेंगी। इस प्रकार, संपत्ति से उत्पन्न आय वह है जो भरण पोषण के लिए दी गई है, न कि संपत्ति के रूप में। अगला स्पष्टीकरण यह है कि राम देवी के जीवनकाल के बाद अपीलकर्ता को शेष आधे हिस्से का स्वामित्व भी मिल जाएगा। यह निर्दिष्ट किया गया है कि यदि राम देवी की मृत्यु तुलसी राम से पहले हो जाती है, तो सभी संपत्तियां पूरी तरह से अपीलकर्ता के पास चली जाएंगी और अन्य संतानों को संपत्ति में कोई हित प्राप्त नहीं होगा। हम ध्यान दें कि तुलसी राम के छह बच्चे थे। एक पुत्र और चार पुत्रीया पहली पत्नी से हैं और बिमला देवी दूसरी पत्नी से उत्पन्न पुत्री थी। जिस समय वसीयत निष्पादित की गई थी, उस समय उनकी एक बेटी अविवाहित थी और वसीयत में यह भी प्रावधान था कि यदि विवाह के लिए राम देवी को धन की आवश्यकता होगी, तो उन्हें संपत्ति गिरवी रखने और उससे धन कमाने का अधिकार होगा और आगे भी उन्हें विवाह से पहले भी आय प्राप्त करने का अधिकार होगा ।

20. हमने वसीयतकर्ता के आशय को समझने के लिए वसीयत के नियम और शर्तें निर्धारित की हैं। वसीयतकर्ता, कम से कम, इस संदर्भ में स्पष्ट है कि संपत्ति से प्राप्त आय वह है जो दूसरी पत्नी को भरण पोषण के रूप में दी जाती है, जबकि जहां तक संपत्तियों का सवाल है, उन्हें अपीलकर्ता के पूर्ण हिस्से के साथ आधा–आधा विभाजित किया जाता है और पत्नी के पास सीमित संपत्ति थी, जिसे उसके जीवनकाल के बाद अपीलकर्ता की पूर्ण संपत्ति में परिवर्तित करना था।

21. अब पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता की दलीलों पर आते हैं।

22. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि राम देवी के किसी भी पूर्व–मौजूदा अधिकार की मान्यता के बदले या भरण–पोषण के बदले में अाजीवन संपत्ति राम देवी को नहीं दी गई थी और इस प्रकार, उक्त अधिनियम की धारा 14(2) लागू होगी, न की उक्त अधिनियम की धारा 14(1)। पूर्व न्याय की दलील को फिर से दोहराया गया । यह आग्रह किया गया कि उच्च न्यायालय गलत आधार पर आगे बढ़ा जैसे कि कानून मुकदमेबाजी के पहले दौर से बदल गया था जबकि तथ्य यह था कि कानून समय के दोनों चरणों में समान था। जो अंतर करने की मांग की गई थी वह यह था कि **शकुंतला देवी** मामले (उक्त) पर गलत तरीके से भरोसा किया गया था क्योंकि उस मामले में वसीयत दिनांक 01.10.1935 की थी और इस प्रकार, यह 1956 से पहले की वसीयत थी और इस प्रकार, वह निर्णय तथ्यात्मक परिदृश्य के लिए मिसाल नहीं था। विचाराधीन परिदृश्य में वाद संपत्ति तुलसी राम की स्व–अर्जित संपत्ति थी और इस प्रकार, वह वसीयत निष्पादित करने में सक्षम थे।

23. हम ध्यान दे सकते हैं कि अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने यह तर्क दिया था कि चूँकि संपत्ति का कब्ज़ा अपीलकर्ता ने ले लिया था और राम देवी के पास उसका कब्ज़ा नहीं था, इसलिए वह उक्त अधिनियम की धारा 14(1) के लाभ का दावा नहीं कर सकती है, **(साधु सिंह बनाम गुरुद्वारा साहिब नरिके और अन्य (2006) 8 एस सी सी 75** और **गद्दाम रामकृष्ण रेड्डी और अन्य बनाम गद्दाम रामिरेड्डी और अन्य (2010) 9 एस सी सी 602)**। हालाँकि, हम ध्यान दे सकते हैं कि हमारे दृष्टिकोण में यह कोई भौतिक विचार नहीं है क्योंकि कहा गया है कि कब्ज़ा विचारण न्यायालय के आदेश के अनुसरण में ले लिया गया है।

24. उत्तरदाताओं की ओर से, एक बार फिर इस बात पर जोर दिया गया कि तथ्यात्मक परिदृश्य **शकुंतला देवी** मामले (उक्त) के समान था और उक्त अधिनियम के बाद एक हिंदू महिला के अधिकारों को **वी तुलसम्मा और अन्य** मामले (उक्त) में स्पष्ट और प्रतिपादित किया गया है। वह एक पूर्ण स्वामी थी, वह भूमि

विक्रय करने की हकदार थी और उत्तरदाता सद्भाविक क्रेता थे जो टीपी अधिनियम की धारा 41 द्वारा संरक्षित थे। इसके अलावा **पंकजाक्षी (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधिगण और अन्य बनाम चंद्रिका और अन्य** मामले (उक्त) में उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ के फैसले के मद्देनजर विधि का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न तैयार करने की आवश्यकता नहीं थी।

<u>हमारा दृष्टिकोण:</u>

25. हमने अधिनियम के प्रासंगिक भाग को निकाल लिया है, विचाराधीन दस्तावेज़ वसीयत है और वसीयत की व्याख्या पर पहले ही राय दे चुके है। इस प्रकार पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता की दलीलों को उसी के परिप्रेक्ष्य में सराहा जाना चाहिए।

26. हमारा मानना है कि वर्तमान मामले में केवल दो वास्तविक पहलुओं की जांच की जानी है क्योंकि विधि का प्रश्न तैयार करने का मुद्दा भी सुलझ गया है। हमारे विचार से दो पहलू इस प्रकार हैं :

(i) दिए गए तथ्यात्मक परिदृश्य में क्या राम देवी उक्त अधिनियम की धारा 14(1) के मद्देनजर संपत्ति की पूर्ण मालिक बन गई या वसीयत के मद्देनजर धारा 14 (2) के तहत स्पष्टीकरण लागू होगा।

(ii) अपीलकर्ता और राम देवी, वसीयत के दो लाभार्थियों के बीच इस न्यायालय में आए मुकदमे के पहले दौर का क्या प्रभाव है?

27. हमारा विचार है कि इन दोनों प्रश्नों का उत्तर अपीलकर्ता के पक्ष में दिया जाना चाहिए और इस कारण से दिया गया निर्णय अस्थिर है।

28. हम सबसे पहले **वी. तुलसम्मा और अन्य** मामले (उक्त) में मौलिक निर्णय की ओर रुख करना चाहेंगे। पैरा 20 में एक हिंदू महिला के भरण–पोषण के अधिकार की घटनाओं और विशेषताओं के संबंध में उभरते प्रस्तावों को निम्नानुसार स्पष्ट किया गया है :

> "20. इस प्रकार उपरोक्त वर्णित निर्णयों और इस विषय पर शास्त्रीय हिंदू कानून के सावधानीपूर्वक विचार और विस्तृत विश्लेषण पर, एक हिंदू महिला के भरण–पोषण के अधिकार की घटनाओं और विशेषताओं के संबंध में निम्नलिखित प्रस्ताव सामने आते हैं :
>
> (1) जहां तक पति का संबंध है, एक हिंदू महिला का भरण–पोषण का अधिकार एक व्यक्तिगत दायित्व है, और उसका भरण–पोषण करना उसका कर्तव्य है, भले ही उसके पास कोई संपत्ति न हो। यदि पति के पास संपत्ति है तो विधवा का भरण पोषण का अधिकार उसकी संपत्ति पर एक न्यायसंगत प्रभार बन जाता है और जो भी व्यक्ति संपत्ति का उत्तराधिकारी होता है, उसके साथ विधवा का भरण–पोषण करने का कानूनी दायित्व होता है ;
>
> (2) यद्यपि विधवा के भरण–पोषण का अधिकार संपत्ति का अधिकार नहीं है, लेकिन यह निस्संदेह संपत्ति में पहले से मौजूद अधिकार है, यानी यह एक जूस ऐड रेम न कि जूस इन रेम है और इसे विधवा द्वारा लागू किया जा सकता है जो संपत्ति पर अपने भरण पोषण के लिए या तो एक समझौते द्वारा या सिविल न्यायालय से डिक्री प्राप्त करके एक प्रभार प्राप्त कर सकती है ;
>
> (3) कि भरण–पोषण का अधिकार एक क्षण की बात है और इतना महत्वपूर्ण है कि भले ही संयुक्त संपत्ति बेची जाती है और क्रेता के पास विधवा के भरण–पोषण के अधिकार की सूचना है, क्रेता उसके भरण–पोषण के लिए कानूनी रूप से बाध्य है ;
>
> (4) कि भरण–पोषण का अधिकार निस्संदेह एक पूर्व–विद्यमान अधिकार है जो 1937 के अधिनियम या 1946 के अधिनियम के पारित होने से बहुत पहले हिंदू कानून में मौजूद था, और इसलिए, एक पहले से मौजूद अधिकार है;
>
> (5) कि भरण–पोषण का अधिकार पति और पत्नी के बीच सामाजिक और लौकिक संबंधों से

प्रवाहित होता है जिसके आधार पर पत्नी अपने पति की संपत्ति में एक प्रकार की (आई.एल.आर. 27 मद्रास 45. (2) आई.एल.आर. 18 बाम्बे 452) सह–स्वामी बन जाती है, हालाँकि उसका सह–स्वामित्व अधीनस्थ प्रकृति का होता है ; और

(6) कि जहां एक हिंदू विधवा अपने पति की संपत्ति पर कब्जे में है, वह अपने भरण–पोषण के बदले में कब्जा बनाए रखने की हकदार है, जब तक कि संपत्ति का उत्तराधिकारी या उसे खरीदने वाला व्यक्ति उसके भरण पोषण के लिए उचित व्यवस्था करने की स्थिति में न हो। ”

29. उपरोक्त परिच्छेद के आलोक में, न्यायालय द्वारा उक्त अधिनियम की धारा 14(1) और 14(2) दर्ज की गईं। यह माना गया कि "कब्ज़ा" शब्द का उपयोग व्यापक अर्थ में किया जाता है, जिसके लिए हिंदू महिला को संपत्ति का वास्तविक या भौतिक कब्ज़ा होना आवश्यक नहीं है और यह पर्याप्त होगा यदि उसके पास संपत्ति में अधिकार है। इसके बाद पैरा 33 में हुई चर्चा में यह राय दी गई है कि संसद का आशय उक्त अधिनियम की धारा 14 की उप धारा (2) को केवल दो संव्यवहार, यानी एक दान और एक वसीयत तक सीमित रखना था, जिसमें स्पष्ट रूप से एक हिंदू महिला द्वारा भरण पोषण के बदले में या विभाजन के दौरान प्राप्त संपत्ति शामिल नहीं होगी। उप धारा (2) में अन्य श्रेणियों को जोड़ने का संसद का आशय केवल यह सुनिश्चित करना था कि कोई भी संव्यवहार जिसके तहत एक हिंदू महिला को उक्त धारा 14(2) में उल्लिखित किसी भी तरीके के तहत एक नया या स्वतंत्र स्वत्व मिलता है। इसके बाद निर्णय के पैरा62 में निष्कर्ष इस प्रकार बताए गए:

“62. अब हम उन कानूनी निष्कर्षों को संक्षेप में प्रस्तुत करना चाहते है, जिन पर हम ऊपर उल्लिखित निर्णयों के विस्तृत विचार–विमर्श के बाद पहुंचे हैं; इस अपील में शामिल विधि के प्रश्न पर 1956 के अधिनियम के धारा 14(1) और (2) की व्याख्या के संबंध में इन निष्कर्षों को इस प्रकार कहा जा सकता है:

(1) हिंदू महिला के भरण–पोषण का अधिकार एक मात्र औपचारिकता या एक भ्रामक दावा नहीं है जिसे अनुग्रह और उदारता के मामले के रूप में स्वीकार किया जा रहा है, बल्कि संपत्ति के विरुद्ध एक ठोस अधिकार है जो पति और पत्नी के बीच आत्मिक संबंधों से उत्पन्न होता है और शुद्ध शास्त्रीय हिंदू कानून द्वारा मान्यता प्राप्त और संलग्न है और याज्ञवल्क्य से लेकर मनु तक के पहले के हिंदू न्यायविदों द्वारा भी इस पर दृढ़ता से जोर दिया गया है। ऐसा अधिकार संपत्ति का अधिकार नहीं हो सकता है, लेकिन यह संपत्ति के विरुद्ध अधिकार है और पति का अपनी पत्नी का भरण–पोषण करने का व्यक्तिगत दायित्व है और यदि उसके या परिवार के पास संपत्ति है, तो महिला को उससे भरण–पोषण पाने का कानूनी अधिकार है। यदि किसी महिला के भरण–पोषण के लिए कोई प्रभार लगाया जाता है, तो उक्त अधिकार कानूनी रूप से लागू करने योग्य हो जाता है। किसी भी दर पर, बिना किसी प्रभार के भी भरण–पोषण का दावा निस्संदेह एक पूर्व–मौजूदा अधिकार है, इसलिए इस तरह के अधिकार की घोषणा या मान्यता देने वाला कोई भी हस्तांतरण कोई नया स्वत्व प्रदान नहीं करता है, बल्कि केवल पहले से मौजूद अधिकारों का समर्थन या पुष्टि करता है।

(2) धारा 14(1) और उसके स्पष्टीकरण को यथासंभव व्यापक शब्दों में प्रस्तुत किया गया है और इसे उदारतापूर्वक महिलाओं के पक्ष में समझा जाना चाहिए ताकि1956 के अधिनियम के उद्देश्य को आगे बढ़ाया जा सके और सामाजिक–आर्थिक लक्ष्यों को बढ़ावा दिया जा सके, जिसे इस लंबे समय से आवश्यक कानून द्वारा प्राप्त किया जाना चाहिए।

(3) धारा 14 की उपधारा (2) एक परंतुक की प्रकृति में है और धारा 14(1) के संचालन में भौतिक रूप से हस्तक्षेप किए बिना इसका अपना एक क्षेत्र है। परंतुक का अर्थ इस तरह से नहीं लगाया जाना चाहिए कि मुख्य प्रावधान या धारा 14(1) द्वारा दी गई सुरक्षा के प्रभाव को नष्ट कर दिया जाए या एक तरह से ताकि मुख्य प्रावधान के साथ पूरी तरह से असंगत हो जाए।

(4) धारा 14 की उपधारा (2) उन लिखतों, डिक्री, एवार्ड, दानों आदि पर लागू होती है जो पहली बार महिलाओं के पक्ष में स्वतंत्र और नए स्वत्व बनाते हैं और इसका कोई अनुप्रयोग नहीं है जहां संबंधित लिखत केवल पहले से मौजूद अधिकारों की पुष्टि, समर्थन, घोषणा या मान्यता देना चाहता है। ऐसे मामलों में एक महिला के पक्ष में प्रतिबंधित संपत्ति कानूनी रूप से स्वीकार्य है और धारा 14(1) इस क्षेत्र में काम नहीं करेगी। हालाँकि, जहाँ कोई लिखत केवल पहले से मौजूद अधिकार की घोषणा करता है या मान्यता देता है, जैसे कि भरण–पोषण या विभाजन या विभाजन का दावा या हिस्सा जिसके लिए महिला हकदार है, उप–धारा बिल्कुल लागू नहीं होगी और महिला का सीमित हित स्वचालित रूप से धारा 14(1) के प्रभावा से पूर्ण रूप में बढा दिया जाएगा और दस्तावेज़ के तहत लगाए गए प्रतिबंधों, यदि कोई हो, को नजरअंदाज करना होगा। इस प्रकार जहां किसी महिला को भरण पोषण या बंटवारे के समय हिस्सेदारी के बदले में संपत्ति आवंटित या हस्तांतरित की जाती है, तो लिखत को उप धारा (2) के दायरे से बाहर कर दिया जाता है और अंतरिती की शक्तियों पर लगाए गए किसी भी प्रतिबंध के बावजूद धारा 14(1) द्वारा शासित होगा ।

(5) धारा 14(1) के स्पष्टीकरण में "विभाजन के समय एक हिंदू महिला द्वारा अर्जित संपत्ति", "या भरण–पोषण के बदले में" "या भरण–पोषण का बकाया" आदि जैसे व्यक्त शब्दों का उपयोग स्पष्ट रूप से धारा 14 (2) को इन श्रेणियों पर लागू नहीं करता है जिन्हें उप धारा (2) के संचालन से स्पष्ट रूप से बाहर रखा गया है ।

(6) धारा 14(1) में विधायिका द्वारा प्रयोग किए जाने वाले शब्द "कब्जे में" का सबसे व्यापक संभव आयाम के हैं और इसमें किसी संपत्ति के स्वामी होने की स्थिति शामिल है, भले ही स्वामी के पास उसका वास्तविक या भौतिक कब्जा न हो: इस प्रकार, जहां एक विधवा को प्रारंभिक डिक्री के तहत संपत्ति में हिस्सा मिलता है या उस समय जब 1956 का अधिनियम पारित किया गया था, लेकिन अंतिम डिक्री के तहत वास्तविक कब्ज़ा नहीं दिया गया था, संपत्ति पर उसका कब्ज़ा माना जाएगा और धारा 14(1) के प्रभाव से उसे संपत्ति में पूर्ण स्वत्व प्राप्त होगा। यह भी समान रूप से अच्छी तरह से स्थापित है कि विधवा का कब्ज़ा, किसी दावे, अधिकार या स्वामित्व के किसी अवशेष के तहत होना चाहिए, क्योंकि यह धारा बिना किसी अधिकार या स्वत्व के किसी श्रेणी के अतिचारी के कब्जे पर विचार नहीं करती है ।

(7) यह कि धारा 4(2) में प्रयुक्त "प्रतिबंधित संपत्ति" धारा 14(1) में दर्शाए गए सीमित हित से अधिक व्यापक हैं और उनमें न केवल सीमित हित शामिल है, बल्कि किसी अन्य प्रकार की सीमा भी शामिल है जो हस्तांतरिती पर लगाई जा सकती है। "

30. हमारे विचार में उपरोक्त निष्कर्ष का प्रासंगिक पहलू पैरा4 है जो बताता है कि उक्त अधिनियम की धारा 14 की उप धारा (2) कहां लागू होगी और यह अन्य बातों के साथ–साथ वसीयत पर भी लागू होती है जो प्रथम बार महिलाओं के पक्ष में स्वतंत्र और नया स्वत्व बना सकती है और यह पहले से मौजूद अधिकार की मान्यता नहीं है। ऐसे मामलों में किसी महिला के पक्ष में प्रतिबंधित संपत्ति कानूनी रूप से स्वीकार्य है और उक्त अधिनियम कीधारा 14(1) उस क्षेत्र में लागू नहीं होगी।

31. हम यहां यह जोड़ सकते हैं कि धारा 14(1) का उद्देश्य पत्नी के सीमित हित के मामले में पूर्ण हित पैदा करना है, जहां ऐसी सीमित संपत्ति की उत्पत्ति उस समय के कानून से होती है। उद्देश्य यह नहीं हो सकता कि एक हिंदू पुरुष जिसके पास स्व–अर्जित संपत्ति है, वह पत्नी को सीमित संपत्ति देने वाली वसीयत निष्पादित करने में असमर्थ है यदि भरण पोषण सहित अन्य सभी पहलुओं का ध्यान रखा जाता है। यदि हम ऐसा मानते हैं तो इसका तात्पर्य यह होगा कि यदि पत्नी को वसीयत के तहत विरासत से वंचित किया जाता है तो यह टिकाऊ होगा, लेकिन यदि सीमित संपत्ति दी जाती है तो यह वसीयतकर्ता के आशय के बावजूद पूर्ण हित में परिपक्व हो जाएगी। हमारे विचार से यह उद्देश्य नहीं हो सकता।

32. वर्तमान मामले में वसीयतकर्ता, तुलसी राम ने अपनी पत्नी के भरण पोषण की आवश्यकताओं का पूरा ध्यान रखा था और यह सुनिश्चित किया था कि संपत्ति से उत्पन्न राजस्व केवल उसे ही मिलेगा। हालाँकि, वह दूसरी पत्नी के रूप में उसे केवल एक सीमित हित देना चाहता था और उसके जीवनकाल के बाद पूरी संपत्ति उसके पुत्र को विरासत में मिलेगी। इस प्रकार, हमारा विचार है कि यह उक्त अधिनियम की धारा 14(2) के प्रावधान ऐसे परिदृश्य में लागू होंगे और राम देवी के पक्ष में केवल जीवन हित था। स्वाभाविक अनुक्रम यह है कि उत्तरदाताओं को विक्रेता के पास जो स्वामित्व है, उससे बेहतर स्वत्व नहीं मिल सकता है और इस प्रकार, विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण सही दृष्टिकोण है और उत्तरदाताओं के पक्ष में विक्रय विलेखों को बनाए नहीं रखा जा सकता है।

33. दूसरे पहलू पर विचार करने पर, हमें यह कहकर शुरुआत करनी चाहिए कि मुकदमों के क्रम को उत्तरदाताओं को सद्भाविक क्रेता के रूप में वर्गीकृत करने के लिए शायद ही कहा जा सकता है। पहला प्रयास राम देवी की पुत्री द्वारा किया गया था, जो निस्संदेह एक मिलीभगत डिक्री है, जबकि उसे संपत्ति में कोई हित नहीं था। फिर उसने संपत्ति में पट्टा के आधार पर हित बनाने की मांग की। इन दोनों पहलुओं को राम देवी और उनकी पुत्री के खिलाफ माना गया, मुकदमे के पहले दौर में उच्चतम न्यायालय तक ने स्पष्ट रूप से कहा कि राम देवी के पास संपत्ति में केवल सीमित संपत्ति थी। उच्चतम न्यायालय तक अधिकार खो देने के बावजूद, विक्रेता राम देवी के खिलाफ मुकदमे के लंबित रहने के दौरान भी बिक्री कार्य हस्तक्षेप कारक थे।

34. हम यह भी देख सकते हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा **शकुंतला देवी** मामले (उक्त) पर निर्भरता गलत है क्योंकि तथ्यात्मक परिदृश्य को समान नहीं कहा जा सकता है। वास्तव में सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह था कि जिस वसीयत की बात की जा रही है वह दिनांक 1.10.1935 की है, जो कि 1956 से पहले की वसीयत है, जो विशिष्ट कारक है। **जुपुडी पारधा सारथी** मामले (उक्त) में भी यही तथ्यात्मक परिदृश्य सामने आया। हमें यह भी ध्यान देना चाहिए कि उच्च न्यायालय ने इस आधार पर गलत आधार पर कार्यवाही की कि मुकदमेबाजी के पहले दौर में कोई बाध्यकारी मिसाल कायम नहीं होगी क्योंकि मुकदमेबाजी के पहले दौर के बाद कानून में बदलाव हुआ था। वास्तव में, कानून में कोई बदलाव नहीं हुआ है क्योंकि सभी निर्णय समय से काफी पहले के थे। हम पहले ही कह चुके हैं कि उत्तरवादीगण के अधिकार केवल राम देवी से प्राप्त होते हैं और एक बार जब निर्णय राम देवी पर बाध्यकारी हो जाता है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि वह तीसरे पक्ष के पक्ष में निर्णय के विपरीत अधिकार सृजित कर सकती हैं और वह भी मुकदमे के लंबित रहने के दौरान किया गया था। हम अभिलेख पर मौजूद तथ्यों से मानते हैं कि विचाराधीन संव्यवहार न केवल सद्भाविक नहीं हैं, बल्कि चरित्र में संदिग्ध भी हैं, जो तीसरे पक्ष के रूप में वसीयत के तहत प्रदत्त अपीलकर्ता के अधिकारों से किसी तरह इनकार करते हैं। राम देवी और उनकी पुत्री का बार–बार किया गया प्रयास पहले सफल नहीं हुआ और राम देवी के खरीदारों के लिए इसे सफल होने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

<u>निष्कर्ष:</u>

35. उपरोक्त का परिणाम यह है कि अपीले अनुज्ञात की जाती है और उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के आक्षेपित निर्णय को रद्द कर दिया जाता है और विचारण न्यायालय के दिनांक 13.8.2009 के निर्णय की अपीलीय न्यायालय द्वारा दिनांक 7.10.2010 को की गई पुष्टि की पुनः पुष्टि की जाती है। पक्षकार अपना व्यय स्वयं वहन करेंगे ।

अपीलें अनुज्ञात की गई ।

Translated , Validated & Corrected by

AMIT RATHORE
ADDITIONAL DISTRICT AND SESSIONS JUDGE RAIPUR